कला के आयाम

एक वाकिया और एक प्रदर्शनी

शेफाली जैन

सावित्रीबाई फुले के बारे में एक वाकिया है। पर पहले मैं उनके बारे में कुछ बताना चाहती हूँ। सावित्रीबाई फुले ने ज्योतिबा फुले व फातिमा शेख के साथ मिलकर 1848 में हमारे देश में लड़कियों के लिए पहला स्कूल खोला था। यह स्कूल पुणे में फातिमा शेख के घर में खोला गया था। इस स्कूल का खुलना दलित तबके से आने वाले लड़कियों के लिए बहुत अहम बात थी। दलित यानी वे सारे लोग जिन्हें एक अरसे से समाज में जाति व्यवस्था के तहत शोषित किया गया है और निचला ठहराया गया है। और महिलाएँ इस दमन का एक बड़ा शिकार रही हैं, खासकर निचली ठहराई गई जातियों की महिलाएँ।

तो सावित्रीबाई फुले ने जब अपने स्कूल में लड़कियों को पढ़ाना शुरू किया तब समाज के ब्राह्मण लोग उनसे बहुत खीज गए। वे नहीं चाहते थे कि औरतों को, वह भी दलित औरतों को पढ़ने या पढ़ाने का मौका मिले। ब्राह्मणों ने हज़ारों सालों से शिक्षा का हक केवल अपने पास रखा था। उसके बल पर ही वे सामजिक, आर्थिक और राजनैतिक ताकत पर अपनी हुकूमत बनाए हुए थे। ऐसे में सावित्रीबाई का स्कूल उनके लिए एक बड़ा खतरा बन गया था!

तो वाकिया यह है कि जब भी सावित्रीबाई अपने घर से स्कूल पढ़ाने के लिए निकलतीं, तो रास्ते में उच्च जाति के लोग उन पर मिट्टी, गोबर, पत्थर फेंकते। यह लगभग रोज़ ही होता। पर सावित्रीबाई पीछे हटने वालों में से नहीं थीं। उन्होंने इस अत्याचार से जूझने का एक समाधान निकाला। वे स्कूल जाते वक्त रोज़ एक साफ साड़ी अपने बस्ते में ले जातीं। रास्ते में पहनी हुई साड़ी तो फेंकें गए कीचड़ और गोबर से मैली हो जाती। पर स्कूल पहुँचकर वे तुरन्त बस्ते वाली साफ साड़ी पहन लेतीं।

मिट्टी, गोबर फिर बोल रहे हैं...

अभी कुछ समय पहले एक प्रदर्शनी में मेरी मुलाकात कलाकार आशीष पलई से हुई। प्रदर्शनी में आशीष की कलाकृतियाँ देखकर मुझे सावित्रीबाई की यह कहानी याद आ गई। आशीष के ज़्यादातर आर्टवर्क मिट्टी, गोबर, बाँस आदि से बनाए गए हैं। वही चीज़ें जिन्हें ब्राह्मणों ने एक शिक्षित दलित स्त्री पर बरसाया था, उसे डराने, धमकाने और शर्मिन्दा करने के लिए। उसे औरतों को पढ़ाने से रोकने के लिए। सदियों से हमारी जाति व्यवस्था ने मिट्टी में मेहनत-मज़दूरी करने का काम, गन्दगी उठाने का काम और हाथों से किए जाने वाले काम दलितों पर छोड़ दिए हैं। मिट्टी को गन्दा और दूषित बताकर उससे जुड़े कामों को नीच बताया है। और इन कामों से जुड़े लोगों को भी नीच ठहराया है। पूजा-पाठ और शिक्षा को दलितों से दूर रखा। यह गैर-बराबर और रूढ़िवादी सोच आज भी कायम है।

सावित्रीबाई ने शिक्षा का हकदार बनकर इस जाति व्यवस्था को नकारा। आशीष भी इस जाति व्यवस्था पर सवाल उठाते हैं, लेकिन कुछ अलग तरह से। आशीष कहते हैं कि वे अपने आर्टवर्क मिट्टी, भूसे, गोबर वगैरह से इसलिए बनाते हैं क्यूँकि वे चाहते हैं कि मिट्टी और सफाई से जुड़े काम और औज़ारों को, जिन्हें सदियों से गन्दा या नीच माना गया और दलितों पर थोपा गया, कला

के माध्यम से अहमियत मिले। वे ना केवल इन वस्तुओं का इस्तेमाल करते हैं, बल्कि अपने हाथों की मजदूरी और दिमागी रचनात्मकता से उन्हें कला का रूप और दर्जा देते हैं। एक तरह से वे सावित्रीबाई पर फेंकी गई मिटटी और गोबर को माध्यम बनाकर जाति व्यवस्था पर सवाल उठाते हैं।

कला में माध्यम और जगह (site) की भूमिका

चित्र 1 में दिख रहे आर्टवर्क का शीर्षक है 'रेसिड्यू ऑफ सोशिअल जस्टिस: व्हेर इज़ अवर लिबर्टी, इक्वालिटी एंड फ्रटर्निटी?' (सामजिक न्याय के अवशेष: कहाँ हैं हमारी स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व?)। कला की कहानी केवल उसकी इमेज/झलक में नहीं किन्तु उसे बनाने में इस्तेमाल की गई सामग्री से भी व्यक्त हो सकती है। आशीष ने इसे बनाने में मिट्टी, गोबर और चारकोल (जो कोयले से बनता है) का इस्तेमाल किया है। अब देखें ये सामग्री हमें क्या कहानी सुनाती है।

है तो यह एक छोटे-से गाँव की झलक। यहाँ पर हमें दिख रही हैं झोपड़ियाँ, कुछ खाटें, गाँव के कुछ जानवर और पक्षी जैसे बिल्ली, गाय, मुर्गी। धान, गेंहूँ या किसी और फसल का ढेर, उसके पास कुछ औज़ार। बीच में शायद गाँव के कुछ लोक देवताओं की मूर्तियाँ हैं और दूर बाबासाहेब आंबेडकर की एक मूर्ती भी है। शायद पेंटिंग में इस्तेमाल की हुई सामग्री हमसे पूछ रही है कि कब तक हम मिट्टी की अहमियत और उससे जुड़े लोगों की मेहनत को ठुकराते रहेंगे। पेंटिंग का शीर्षक भी यही सवाल कर रहा है। कहाँ है वे

चित्र 1. आशीष कुमार पलई, शीर्षक: 'रेसिड्यू ऑफ सोशिअल जस्टिस: व्हेर इज़ अवर लिबर्टी, इक्वालिटी एंड फ्रटर्निटी?'
माध्यम: कागज़ पर मिट्टी, गोबर और चारकोल, साइज़: 120x180 सेंटीमीटर, साल: 2019, फोटो: आशीष पलई

उसूल जो बाबासाहेब ने हमें संविधान के तहत दिए थे – स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व? कब तक यह ऊँच-नीच चलती रहेगी? वे दो आँखें, जो गाँव के उस पार से अन्दर झाँक रही हैं, कहीं हमारी आँखें ही तो नहीं? क्या हम इस सवाल को देखकर भी अनदेखा कर देंगे?

चित्र 2 में जो आर्टवर्क है उसका शीर्षक है 'ओप्प्रेस्सड लाइव्स मैटर' (शोषित लोगों की ज़िन्दगी भी महत्वपूर्ण हैं)। यह काम आशीष ने अपने खेत में बनाया। सर्दी के मौसम में जब उनके खेत में फसल नहीं लगती, तब उन्होंने वहाँ अपनी कला प्रदर्शनी की। यह प्रदर्शनी भी पूरी तरह से मिट्टी, भूसे, गोबर आदि से बनी है। इन चीज़ों से खेत में आशीष ने ओड़िया भाषा की वर्णमाला के अक्षर बनाए हैं। ये काफी बड़े और 3-डी में हैं। कुछ-कुछ गाँव के घरों जैसे लगते हैं, बस बिना छत के। इन पर कुछ प्रतिमाएँ हैं – जैसे आंबेडकर की प्रतिमा, एक जानवर की प्रतिमा, एक आदमी की प्रतिमा (ये आदमी कुछ वाद्य बजा रहा है) और कुछ औजारों की प्रतिमाएँ। खेत के बीच एक औरत की भूसे और मिट्टी से तैयार की गई प्रतिमा है (चित्र 3)। औरत के हाथ में एक नीला झण्डा है, शायद आंबेडकर से जुड़ी विचारधारा और दलित चेतना का प्रतीक। एक और औरत की प्रतिमा है, जो ज़मीन पर गिरी है। वह शायद घायल है। उस पर हिंसा के निशान हैं। खेत के बीच एक सूअर की और एक बकरे के सर की 2-डी प्रतिमा भी है।

आशीष शायद कहना चाहते हैं कि शोषण शरीर के अलावा भाषा के स्तर पर भी होता है। वर्णमाला

चित्र 2. आशीष कुमार पलई, शीर्षक: 'ओप्प्रेस्सड लाइव्स मैटर'
फोटो: आशीष पलई

चित्र 3. भूसे और मिट्टी से बनी एक औरत की प्रतिमा, फोटो: आशीष पलई

(जो भाषा की नींव है) हमें दुनिया का वर्णन करने में मदद करती है, दुनिया रचती है। यह वर्णन किसे नीचे ठहराता है यह उनके हाथ में हैं जिनके पास वर्णमाला पर यानी शिक्षा पर अधिकार है। जैसा मैंने पहले भी बताया, सदियों से ब्राह्मणों ने शिक्षा खुद के पास ही रखी। पर अब स्थिति बदल रही है और इसे बदलने में सक्रिय हैं बहुत-से दलित लेखक, चिन्तक और कलाकार। आशीष के आर्टवर्क में नीला झण्डा लहराती वह औरत (ठीक सावित्रीबाई की तरह ही) वर्णमाला की नई मालकिन और रचेता होने का हक रखती है। इससे वह दुनिया का एक नया वर्णन देगी, नया इतिहास लिखेगी जिसमें ऊँच-नीच नहीं होगी!

आशीष ने बताया कि उनकी एम. ए. की पढ़ाई दिल्ली से हुई। पर उनकी इच्छा थी कि वे अपनी कला के माध्यम से जो व्यक्त करना चाहते हैं उसे अपने गाँव के रहवासियों के साथ भी साझा करें, ना कि सिर्फ शहरी लोगों के साथ। चित्र 2 के आर्टवर्क को आशीष ने अपने गाँव आरोल में बनाकर यह प्रयोग किया कि क्या इमेज और माध्यम के अलावा कला प्रदर्शित करने की जगह भी कला के मायने बदल सकती है? ऐसी कला जो किसी जगह से गहरा ताल्लुक रखती है और इसलिए खास तौर से उस जगह पर बनाई जाती है, उसे 'साइट-स्पेसिफिक कला' कहा जाता है। साइट यानी जगह और स्पेसिफिक यानी विशेष। ऐसी कला को किसी और जगह पर प्रदर्शित करना मुश्किल है क्यूँकि फिर उसका अपनी जगह के विशिष्ट पहलुओं, जैसे बोली, संस्कृति, समुदाय, ज़मीन और समाज से ताल्लुक ढीला पड़ सकता है।

शहर हो या गाँव जाति व्यवस्था पर बातचीत छेड़ना, सवाल उठाना कोई आसान काम नहीं है। सावित्रीबाई की कहानी तो मैंने तुम्हें बताई ही है। आशीष में भी सावित्रीबाई-सा जज़्बा है। इसलिए तो वे भी पीछे नहीं हटते और लगातार अपनी कला के माध्यम से बातचीत के मौके ईजाद करते रहते हैं।